अध्याय द्वितीय

प्राक् तथा आद्य इतिहास, इतिहास

अध्याय – 2

प्राक् तथा आद्य इतिहास, इतिहास

मानव ने प्रगति के पथ पर जब पहला कदम उठाया, उस समय का लिखित इतिहास नहीं है परंतु, उसके द्वारा निर्मित एवं प्रयुक्त सामग्री का अध्ययन पुरातत्ववेत्ता के शोध का विषय बना हुआ है। मानव इतिहास का प्रारंभिक काल निःसंदेह विविधताओं से भरा है।

सभ्यता के इतिहास को डेनमार्क के, सी.जी. थामसन ने 1816 में तीन भागों में विभाजित किया था –

1. पाषाण काल
2. ताम्र–कांस्य युग
3. लौह युग

कुछ समय पश्चात् डेनमार्क के ही एक और विद्वान वारसा ने डेनमार्क में किये गये उत्खनन के आधार पर पाया, कि सबसे नीचे के स्तर से फ्लिंट, उसके ऊपर कांस्य और सबसे ऊपर के स्तर से लौह उपकरण प्राप्त हुए। इस आधार पर मान लिया गया कि मानव सभ्यता का विकास क्रमशः तीन चरणों में हुआ। इस वर्गीकरण से कई पुरातत्ववेत्ता सहमत नहीं हुए।

नेलसन् ने नया वर्गीकरण प्रस्तुत किया। प्रागैतिहासिक काल को इन्होंने चार भागों में विभक्त किया। 1. बर्बर, 2. शिकारी तथा यायावर 3. कृषक तथा 4. सभ्य। यह विभाजन मानव सभ्यता के क्रमिक विभाजन को तो दर्शाने में सक्षम है, परंतु यह तकनीकी विकास को दर्शाने में असमर्थ है।

जान लुब्बॅक ने सन् 1816 में अपनी पुस्तक 'प्रिहिस्टारिक टाइम्स' में एक और नया वर्गीकरण प्रस्तुत किया। इन्होंने प्रागैतिहासिक काल को 1. पुरापाषाण काल 2. नव पाषाण काल में विभक्त किया है।

पुरापाषाण काल का विस्तार बहुत लंबे समय तक था, इसलिए पुराविदों ने पुरापाषाण काल को निम्न उप कालों में विभक्त किया :–

1. निम्न पुरापाषाण काल

2. मध्य पुरापाषाण काल

3. उच्च पुरापाषाण काल

प्रारंभ में पुरातत्ववेत्ताओं ने पुरापाषाण काल व नवपाषाण काल में अंतराल की कल्पना की थी, क्योंकि उस समय तक पुरापाषाण काल के अंत व नव पाषाण काल के प्रारंभ के विषय में सीमित ज्ञान था। सन् 1887 ई. में फ्रांस के ला मास द अजील नामक स्थान के उत्खनन ने इतिहास में काल गणना को एक नया मोड़ दिया। यहां से पुरापाषाण काल तथा नवपाषाण काल के मध्य लघु पाषाण काल में उपकरण प्राप्त हुए। इस खोज के द्वारा विद्वानों ने निष्कर्ष निकाला, कि पुरापाषाण काल एवं नवपाषाण काल के मध्य में कुछ स्थानों पर मानव संस्कृति संक्रांति काल से गुजरी। इस मध्यवर्ती काल को मध्य पाषाण काल नाम प्रदान किया गया।

मानव ने अपने दैनिक कार्यों के लिए जिन उपकरणों को बनाया उनमें से हमे साक्ष्य के रूप में मात्र पाषाण उपकरण ही प्राप्त हुए हैं, परंतु इस बात से यह अनुमान नहीं लगाना चाहिए कि मानव ने आदि काल में सिर्फ पाषाण उपकरण का ही निर्माण किया था। विद्वानों का मानना है, कि मानव ने पाषाण, लकड़ी, अस्थि, हाथी दाँत, सींग, रेशे आदि का उपयोग, उपकरणों के रूप में किया होगा परंतु दीर्घकाल में उनका अस्तित्व समाप्त हो गया।

प्रथम अंतर्हिमयुग की समाप्ति अथवा द्वितीय हिमयुग के प्रारंभ से ऐसे उपकरण प्राप्त हुए हैं, जिन पर उनको निर्मित करने के स्पष्ट चिन्ह दिखते हैं।

सर्वप्रथम जो उपकरण प्राप्त होते हैं वह हस्तकुल्हाड़ी है। यह आगे की तरफ नुकीली है, आजू–बाजू से फलक निकाली गयी हैं, जिसमें धार का निर्माण किया गया है, पीछे की तरफ लगभग गोल रखा गया है, ताकि उपयोग करने में आसानी रहे। इस उपकरण का कई कार्यों में मानव उपयोग किया करता था। समय के साथ–साथ मानव ने अलग–अलग कार्य के लिए अलग–अलग उपकरणों का निर्माण किया। ये उपकरण पाषाण पर फलकीकरण के द्वारा बनाये जाते थे। बाटिकाश्म, क्वार्टजाइट तथा ट्रेप इत्यादि पाषाणों का उपयोग बनाने में किया गया। इनमें मुख्य रूप से पाषाण की कठोरता का ध्यान रखा जाता था।

ई.जे. वेलैण्ड को सन् 1920 में बुगाण्डा में काफू नदी के सोपानों से पेबुल उपकरण प्राप्त हुए इस नाम के कारण इन्हें ''काफुबॉं पेबुल'' कहा जाने लगा। परंतु जे. बेजमन्द क्लार्क, ने यह सिद्ध किया कि ये उपकरण मानव ने नहीं बनाये, वरन् वे प्राकृतिक आघात के कारण बने थे। इस कारण 'काफुबॉं पेबुल' शब्द का प्रयोग प्राग अध्ययन में अब नहीं किया जाता। अब ओल्डुबॉं से प्राप्त पेबुल उपकरणों को सर्वाधिक प्राचीन माना जाता है। इनकी खोज एल.एस.बी. लौकी ने तंजानिया के ओल्डुवाईगार्ज नामक स्थान के सबसे निचले स्तर से की थी।

इन उपकरणों को लगभग 18 लाख वर्ष प्राचीन माना जाता है। सन् 1970 में रिचर्ड लौकी को कीनिया देश के तुराकाना झील के किनारे इस प्रकार के उपकरण प्राप्त हुए। इन उपकरणों की तिथि 26 लाख वर्ष प्राचीन मानी गयी है। ये उपकरण ओल्डुबॉं उपकरणों से अधिक प्राचीन माने गये हैं। ये उपकरण क्वार्टलाइट पत्थर पर बने थे। ये आकार में बड़े तथा ठोस हैं। इनमें एक तरफ फलकीकरण प्राप्त होता है, अनबिल विधि को अपनाया गया हैं इस प्रकार के उपकरण विश्व में कीनिया के कानम ट्रांसबाल की बॉल घाटी, अलजीरिया में आइन हेमन एवं इथोपिया में ओमी घाटी में प्राप्त हुए। इन उपकरणों का निर्माता आस्ट्रेलिपिथिकस को माना जाता है। भारत में ऐसे उपकरण पहले सोहन घाटी में और बाद में अनेक क्षेत्र में पाये गये हैं। एच.जी. मोबीअस ने सन् 1944 में भारत के पुरा पाषाण काल का अध्ययन करके बटिकाश्यम उपकरणों को चापर तथा चॉपिंग दो भागों में विभक्त किया।

परंतु कुछ विद्वान इस विभाजन से असंतुष्ट थे जब आर. बी. जोशी ने नया वर्गीकरण प्रस्तुत किया। इन्होंने इन उपकरणों को एक पार्श्वीय तथा द्विपार्श्वीय उपकरण कहा।

निर्माण प्रविधियाँ :

प्रागैतिहासिक मानव ने उपकरणों को जिन विधियों से बनाया था, विद्वानों ने उनके निम्नलिखित प्रकार बताये हैं।

1. ब्लॉक ऑन ब्लॉक या अनविल तकनीक :

इस विधि में बटिकाश्म या अन्य पाषाण के द्वारा किसी अन्य स्थिर बड़े पाषाण खण्ड पर आघात किया जाता है जिसके परिणामस्वरूप उनसे बड़ी तथा ठोस लकें निकल जाती हैं। अनविल बटिकाश्म में जिस स्थान पर आघात करना है, एक मजबूत उच्चतल बन जाता है जिसे बल्व ऑफ परकसन कहते हैं। इस विधि से बड़े पाषाण उपकरणों का निर्माण किया जाता है क्योंकि बड़े पाषाण खण्ड को एक हाथ में पकड़कर दूसरे हाथ में पाषाण लेकर आघात करना कठिन है। इस विधि से बटिकाश्म में जो चिह्न बन जाते हैं, वे गहरे, ठोकर पट्टी के लम्बरूप तथा चौड़ाई से लंबाई में अधिक होते हैं। इसमें प्रहार पट्ट सादा होता है। इस विधि से बने उपकरणों पर सूक्ष्म अनुशोधन असंभव हैं इस विधि से निकाली गयी फलकों का उपयोग संभवतः मानव माँस काटने में किया करते होंगे।

2. प्रत्यक्ष प्रतिघात या स्टोन हैमर तकनीक :

इस विधि का बहुत अधिक उपयोग किया गया है, इसमें दो सामान्य आकार के पाषाण को लिया जाता है इसमें से एक हथौड़े का कार्य करता है और दूसरे पर उपकरण गढ़ा जाता हैं पाषाण खण्ड से फलक निकालते समय पाषाण को हाथ में पकड़ा जाता था पैरों में फँसा कर या वृक्ष का सहारा लेकर फलकीकरण किया जाता था। फलक उसी अनुपात में निकलते जिस दिशा व अनुपात में पाषाण पर आघात किया जाता था। जिस पाषाण से फलक निकलेगी, यहाँ ऋणात्मक बल्ब ऑफ परकसन के निशान बन जाते हैं, तथा फलक में उसी भाग का उभार बन जाता है। एक बार फलक निकालने के बाद इस विधि का प्रयोग दूसरी बार फलक निकालने में भी किया जाता था। निम्न पुरापाषाण काल में इस प्रकार के उपकरणों का मानव छीलने, काटने व खोदने में उपयोग किया करता था।

3. स्टेप अथवा कन्ट्रोल हैयर तकनीक :

इस विधि के नाम से ही स्पष्ट होता है, कि उपकरण निर्माण की इस विधि में प्रहार शक्ति को नियंत्रित रखा जाता हैं इस विधि में उस पाषाण को लिया जाता है जिसका उपकरण बनाना हैं, दूसरे हाथ में एक ओर पाषाण लिया जाता है जिससे संतुलित प्रहार किया जाता हैं और छोटी–छोटी फलकें निकाली जाती है

तथा पाषाण को स्टेप जैसा आकार प्रदान किया जाता है। 'लीकी' के मतानुसार इस विधि में छोटे हथौड़ों का प्रयोग किया जाता होगा, जिनकी आघात शक्ति कम होती है। आघातित कोश में परिवर्तित करने के बाद अनविल विधि का प्रयोग भी इस विधि में किया जा सकता है।

4. सिलेण्डर हैमर तथा हॉलो हैमर तकनीक :

इस विधि में पाषाण से पतले तथा लंबे फलक निकाले जाते हैं। ऐसे फलक तभी निकलना संभव है, जब विशेष प्रकार के हथौडे का प्रयोग किया जाये। यह बात जानने के लिए 'लीकी' ने कई प्रयोग किये और पाया कि यह विधि तब सफल हो सकती है जबकि लकड़ी या पोली हड्डी से प्रहार किया जाये, इसलिए इस विधि का यह नामकरण किया गया है। इस विधि से एक बात और सिद्ध होती है कि इसका उपयोग करने वाला मानव उपकरण बनाने के पूर्व उसकी योजना बना लेता था।

5. क्लेक्टोनियम तकनीक :

इस विधि से बने उपकरण सर्वप्रथम इंग्लैण्ड के क्लक्टोन–आन–सी नामक स्थान से प्राप्त हुए, इस कारण इस विधि का यह नामकरण हुआ। इस विधि से निर्मित उपकरण लंबी तथा ठोस फलकों पर बने हैं। समतल धरातल वाले पाषाण खण्डों का चुनाव इस विधि के उपकरणों के लिए किया जाता है। इस प्रकार के पाषाण नदियों में पाये जाते हैं, जो गोल होते हैं। पाषाण के सपाट सिरे पर हथौड़ों के प्रहार से एक बड़ी फलक निकाली जाती हैं निकाली गयी फलक के निचले भाग में छोटा वृत्तकार उभार बन जाता है। इस उभरे हुए भाग को धनात्मक बल्व ऑफ परकसन कहते हैं तथा सपाट भाग को प्रहार पट्ट कहते हैं। इस प्रकार की फलक निकालने में प्रत्यक्ष हथौड़े से प्रहार किया जाता है या अनवित्त विधि का प्रयोग किया जाता है।

6. लैबेलोशियन तकनीक :

इस विधि से बने उपकरण सर्वप्रथम फ्रांस के लैबेलोश पेरिट नामक स्थान से प्राप्त हुए थे, इस कारण इस विधि का यह नामकरण हुआ। इस विधि में सर्वप्रथम आंतरिक का निर्माण किया जाता है इसके बाद विशेष प्रकार की फलकें निकाली

जाती हैं। आंतरिक के चारों ओर से कच्चा समकर्तन निकाला जाता है उसके बाद उसकी ऊपरी तथा निचली सतहों से इस प्रकार फलकें निकाली जाती कि फलक स्कार का मध्य में आकार मिले। जिससे आंतरिक, गोलाकार या अर्ध–गोलाकार रूप में आ जाता हैं दूसरी स्थिति में धीमी गति के प्रहार से या छेनी के प्रहार से प्रहार पट्टी बनायी जाती है, इससे पतले तथा अंडाकार फलक निकालते हैं हत्थे का निर्माण भी अनेक प्रहार के बाद किया जाता है। प्रहार पट्ट तथा फलक स्कार की धुरी के मध्य बनने वाला कोण 90^0 अंश से कम या 90^0 अंश के बराबर पाया जाता है। इस प्रकार से तैयार किये गये आंतरिक की आकृति कछुए की पीठ के समान होती है, इस कारण इसे कर्मान्तरक भी कहा जाता है। इस विधि का उपयोग यूरोप में निम्न पुरापाषाण काल के अंतिम चरण में देखने को मिलता है।

7. दबाव तकनीक :

इस विधि में पाषाण पर आंतरक का निर्माण किया जाता है, जिनकी आकृति बेलनाकार अथवा सपाट होती है। कठोर पाषाण की मदद से आंतरक को खुरदरा बनाया जाता है, यह खुरदरापन उपकरण को पड़कने में सहायता प्रदान करता है। द्वितीय चरण में आंतरक के एक किनारे से छोटी–छोटी फलकें निकाली जाती हैं जिससे आंतरक उपकरण बनाने के लिए तैयार हो जाता हैं इस विधि का उपयोग मुलायम पाषाण पर किया जाता है। दो–तीन इंच मोटी तथा दो–चार इंच लंबी छड़ी जिसके एक सिरे पर नुकीली अस्थि, सींग अथवा दाँत बंधा होता है, जिसके द्वारा आंतरक के उस भाग को भेदकर लगातार दबाव डाला जाता है, जिससे आंतरक से फलक निकाली जाती है। इस विधि का उपयोग उच्च पुरा पाषाण युग में किया जाने लगा था।

8. प्रतिघात तकनीक :

इस विधि में भी पाषाण पर आंतरक का निर्माण किया जाता है। कठोर पाषाण की मदद से आंतरक को खुरदरा बनाया जाता, उसके बाद एक किनारे से छोटी–छोटी फलकें निकाली जाती है। तत्पश्चात् आंतरक उपकरण बनकर तैयार हो जाता। अब लकड़ी की छैनी से या लकड़ी की मुँगरी के प्रहार से छोटी–छोटी फलके निकालते हैं। पश्चिम यूरोप के पुरास्थलों से इस विधि के उपकरण निम्न

पुरापाषाण काल में मिलते हैं, पर उच्च पुरापाषाण काल में इस ताम्रपाषाण युग की प्राप्ति होती है। इस विधि से छोटे उपकरणों का निर्माण किया गया, जिनकी लंबाई आधा इंच से ढाई इंच के बीच है। ये तीन प्रकार के हैं 1. शंक्वाकार या नुकीले, 2. सपाट सतह वाले, 3. छेनी जैसे या तिर्यक सिरे वाले मध्य पाषाण काल में इस विधि से माइक्रोव्यूरिन का निर्माण किया गया था।

9. फ्लूटिंग तकनीक :

इस विधि द्वारा ब्लेड व माइक्रो ब्लेड दोनों ही बनाये जाते हैं। इन्हें बनाने के लिए आंतरक के एक निश्चित बिन्दु पर लंबवत दबाव डाला जाता है जिससे पतले तथा समानांतर ब्लेड लगातार निकाले जाते हैं। इन ब्लेडों पर अनुशोधन द्वारा उन्हें किसी विशेष उपकरण में बदला जाता है। ब्लेड के दोनों सिरों पर साधारणतः धार पायी जाती हैं इस कारण एक तरफ की धार को अनुशोधन द्वारा कुठित कर दिया जाता है। किस भाग को कुण्डित किया गया जाये, यह निर्माता के कार्य पर निर्भर करता था। इस प्रकार से किये गये अनुशोधन को बैकिंग या फ्लूंटिग तकनीक भी कहा जाता है।

10. घिसने तथा चमकाने की तकनीक :

पुरापाषाण युग तथा मध्यपाषाण युग के जो उपकरण प्राप्त होते हैं, वे फलकीकरण से बनाये गये हैं। परंतु नवपाषाण काल के जो उपकरण प्राप्त होते हैं उनके कार्यांगों को घिस कर चिकना किया गया है, और चमकाया गया है। विद्वानों का ऐसा मानना है, कि नवपाषाण काल में जब मानव स्थायी जीवन जीने लगा, एवं उसके पास समय बचने लगा, उस बचे हुए समय में मानव ने कला का विकास किया। उपकरणों का घिसना या चमकाना भी उपकरणों को कलात्मक रूप देना ही है। कुछ उपकरणों के सिफ कार्यांग चमकाये गये हैं तथा कुछ को संपूर्ण चमकाया या घिसा गया है।

इस प्रकार के उपकरण रबेदार आग्नेय पाषाणों पर जैसे – बेसाल्ट, इपिडायोराइट, डोलोराइट पर बनाए गए हैं। इन पाषाणों पर फलकीकरण करके उपकरण का रूप प्रदान किया जाता, इसके पश्चात् उपकरण के इस रूप को और निखारा जाता है। फलकों के चिह्नों को नुकीले उपकरण से हटाया जाता, जिससे

उपकरण की सतह समतल हो जाये, फिर फलकीकरण करके कार्यांग को तीव्र बनाया जाता है, इसके बाद किसी पाषाण खण्ड पर पानी और रेत डाल कर घिसा जाता है। पहले कार्यांगों को घिसा जाता था, पर बाद में संपूर्ण उपकरण को घिसकर चमकीला बनाया जाने लगा। सन् 1943 में पश्चिमी यूरोप की सील्यूटीयन संस्कृति के साथ तथा डेनमार्क की मध्य पाषाण युगीन संस्कृति किचिन मेडिन में ऐसे उपकरण प्राप्त हुए हैं जिनको थोड़ा चमकाया है, इस आधार पर इसे इस विधि का उद्गम स्थल माना है।

निम्न पुरापाषाण काल में मानव जीवन :

इस काल के मानव जीवन से संबंधित पुरातात्त्विक सामग्री कम ही प्राप्त हुई है, जिस कारण उस समय के मानव जीवन का विस्तृत वर्णन करने में कठिनाई होती है, परंतु इस समय का मानव नग्न रहता था, और मानव अपना जीवन पशु समान ही खुले आसमान के नीचे बिताता था, उसे घर या गुफा में रहने का ज्ञान अभी नहीं था परंतु यहाँ अपवाद भी प्राप्त होते हैं, जैसे चीनी मानव। यह गुफाओं का प्रयोग निवास के रूप में किया करता था और इस मानव को ही सर्वप्रथम अग्नि का ज्ञान प्राप्त हुआ। प्राप्त पशुओं की अस्थियों से ज्ञात होता है कि ये मानव माँसाहारी था। प्रारंभ में छोटे पशुओं का शिकार किया जाता था, परंतु बाद के काल में बड़े पशुओं का शिकार किया जाने लगा, जिसके लिए फंदे का उपयोग होता था या फिर खड्डा खोदा जाता था।जब इनमें पशु फँस जाते थे तो उनका शिकार कर लिया जाता था।

मध्य पुरापाषाण काल :

विद्वानों ने इस काल को तृतीय अंतर्हिमानीय तथा चतुर्थ हिमानी काल के बीच में रखा है। इस काल में नियंडरथल मानव का पृथ्वी पर आधिपत्य था। इस काल में निम्न पुरापाषाण काल की पश्यूलॅन हस्तकुल्हाड़ियाँ प्राप्त नहीं होती। अब भिन्न–भिन्न कार्य हेतु अलग–अलग उपकरण बनाये जाने लगे। इन उपकरणों को मुलायम पाषाणों पर बनाया जाने लगा, जिनका आकार छोटा होता था, इन्हें लैबेलोशिबन तथा क्लकटोनियन तकनीक से बनाया जाता था, पर अनुशोधन की

क्रिया का भी प्रभाव दिखता है। यह संस्कृति विद्वानों में सदैव विवाद का विषय रही है क्योंकि इस संस्कृति के उपकरणों में विविधता प्राप्त होती है।

मध्यपुरापाषाणकाल में जीवन :

पुरापाषाण काल में सर्वाधिक मानव कंकाल मध्यपुरापाषाण काल के ही मिले हैं। इस काल में सर्वप्रथम मानव को दफनाने के उदाहरण प्राप्त होते हैं। मानव कंकाल के पास पाषाण उपकरण, पशुओं की हड्डियाँ भी प्राप्त होती हैं। इससे अनुमान होता है, कि उस काल के मानव ने भी जीवन–मृत्यु पर विचार करना प्रारंभ कर दिया होगा।[6]

उच्च पुरापाषाणकाल :

मध्य पुरापाषाणकाल में नियंडरस्थल मानव का वर्चस्व पृथ्वी पर था। परंतु उच्च पुरापाषाण काल में मेधावी मानव का वर्चस्व पृथ्वी पर हो गया। पहले माना जाता था कि नियंडरस्थल मानव को हराकर मेधावी मानव ने अपना आधिपत्य जमा लिया। मेधावी मानव की अपेक्षा नियंडरथल मानव कुरूप था, इस कारण इन दोनों का शारीरिक संपर्क नहीं हुआ होगा। परंतु पेलेस्टाइन मेंगैलिली समुद्र के पास गुफा में जो कपाल मिले हैं तथा कार्मेल मिश्रण के लक्षण मिलते हैं। 1938 में रूस के उजबेकिस्तान से नियंडरस्थल बालक के अवशेष मिले हैं जिससे दोनों मानव जातियों के लक्षण प्राप्त हुए हैं। इससे सिद्ध होता है कि इन दोनों मानव जातियों का मिलाप हुआ होगा, मेधावी मानव की शारीरिक बनावट आज के मानव समान ही थी। मेधावी मानव के आदि स्थल के बारें में विद्वानों में मतैक्य नहीं है, क्योंकि उसके अवशेष उच्च पुरापाषाण काल में यूरोप, एशिया एवं अफ्रीका में कई स्थानों पर एक साथ पाये गये हैं। कुछ विद्वानों का मत है कि मेधावी अफ्रीका या पश्चिमी एशिया से यूरोप पहुँचा। पश्चिम एशिया से मेधावी मानव के जो अवशेष प्राप्त हुए हैं उनकी आयु एक लाख वर्ष प्राचीन मानी गयी है।

सामाजिक जीवन :

मानव भरण पोषण हेतु शिकार पर ही आश्रित था। गुफा चित्रों में बड़े जानवरों का शिकार करते मानव को समूह में दर्शाया गया है, जिससे सिद्ध होता है, मानव सामूहिक जीवन व्यतीत करने लगा था। पुरूष शिकार करने जाते होंगे

संभवतः स्त्रियाँ बच्चे कंद–मूल–फल आदि का संग्रह तथा घर के अन्य कार्य संपादित करतीं थीं, जिससे यह सिद्ध होता है, कि कार्य विभाजन प्रारंभ हो गया था।

इस युग में अनाज संग्रह परिवार प्रथा एवं श्रम विभाजन के फलस्वरूप जीवन यापन सुलभ हुआ। मनुष्य का मस्तिष्क भरपूर विकसित हो चुका था, इसलिये अब वह शक्ति की तुलना में बुद्धि का अधिक उपयोग करने लगा तथा छोटे तीक्ष्ण, सुदृढ़ और उपयोगी उपकरणों को लकड़ी अथवा हड्डी की मूठ में लगाकर व्यापक उपयोग किया जाने लगा। अनाज संग्रह, पशुपालन और श्रम विभाजन के परिणामस्वरूप अब खाद्य सामग्री की समस्या कठिन नहीं रही। भोजन एकत्र करने की चिंता से मुक्ति ने अवकाश के क्षणों में कलात्मक गतिविधियों की प्रेरणा दी। फलस्वरूप शैलचित्र, पत्थर, अस्थि और हाथी दाँत की मूर्तियाँ और आभूषणों का निर्माण प्रारंभ हुआ।

कला :

इस काल के मानव ने पूर्ववर्ती काल के मानव की तुलना में कला के क्षेत्र में भी काफी विकास किया था। अस्थि, सीप, कोड़ियों, हाथी दाँत से उसने स्वयं को सज्जित करने हेतु कई आभूषण बनाये। जिन पर उसने नक्काशी की थी। उपकरणों पर तथा मूठ पर भी उसने पशु आकृति की नक्काशी की थी। अस्थि के गोल टुकड़ों पर नक्काशी प्राप्त होती है जिसे चर्म, वस्त्र आदि पर रंगाई, छपाई के काम में लाया जाता होगा।

मूर्तिकला में भी इस काल में काफी विकास हुआ, जिनमें नारी मूर्तियाँ प्रमुख हैं। ये मिट्टी, अस्थि, हाथी दाँत पर प्राप्त होती हैं। इन मूर्तियों के सिर छोटे, बाल दर्शाने के लिए कुछ रेखाएँ खींची गयी हैं, परंतु स्तन, पेट, नितम्बों को कुछ अधिक बड़ा बनाया गया है। कुछ विद्वानों का मत है, कि इनका निर्माण किसी धार्मिक उद्देश्य से किया गया है कुछ इसे वीनस अथवा रति की मूर्तियाँ कहते हैं। पटने (गुजरात) में अस्थि पर निर्मित मातृदेवी की प्रतिमा, भीम बैठका क्षेत्र में अण्डे के खोल कर उत्खचित मातृदेवी की आकृति भारत वर्ष में इस काल की महत्वपूर्ण उपलब्धियाँ हैं।

गुफाओं की भित्ति पर इस काल के मानव ने प्रारंभ में तो एक रंग से चित्र बनाने पर, बाद के काल में चित्रों में विविध रंग भरना शुरू किये। इन चित्रों में मानव जीवन के विधि स्वरूप देखने को मिलते हैं जैसे शिकार के दृश्य, मानव आकृतियाँ, मानव समूह, उपकरण आदि। इन चित्रों को क्यों बनाया जाता था इस संबंध में विद्वान मतैक्य नहीं है। कुछ विद्वानों के अनुसार भित्त चित्र, उपकरणों को सजाना ये मात्र कलात्मक अभिव्यक्ति ही है परंतु, कुछ विद्वानों का मत है, कि ये चित्र धार्मिक भावना या खाद्य समस्या के कारण बनाये गये हं। इस काल में मानव का शायद यह विश्वास रहा है शिकार करने के पूर्व उस पशु की आकृति का शिकार कर लिया जाये तो सफलता अवश्य मिलेगी। माचन विज्ञान में इस विचार धारा को सादृश्यमूलक जादू कहते हैं।

मध्यपाषाणकाल :

प्रारंभ में जो काल विभाजन विद्वानों ने किया था उसमें पुरापाषाण काल के बाद नवपाषाण काल को माना गया था, परंतु इन दोनों कालों के बीच एक लंबा अंतराल प्राप्त होता था। सन् 1887 ई. में फ्रांस की 'मास द एजिल' नामक गुफा से जो उपकरण प्राप्त हुए थे, न तो पुरापाषाण काल की विशेषताएँ लिये थे, और न ही नव पाषाण युग की, इस कारण इस काल को संक्रांति काल भी कहा गया। इस काल के विद्वानों ने कई नाम दिये जैसे – अनु पुरापाषाण काल, आद्य नव पाषाण काल तथा मध्य पाषाण काल। कालांतर में मध्य पाषाण काल प्रचलित हो गया। यह एक यूनानी भाषा में बना है मेसोस का अर्थ 'मध्य' होता है तथा लिथॉस का अर्थ 'पाषाण' होता है।

इस काल के उपकरण छोटे, ज्यामितिक, चकमक पाषाण पर निर्मित हैं जिन्हें लकड़ी या अस्थि पर बाँध कर भी प्रयोग में लाया जाता था। मध्य पाषाण काल की प्रमुख संस्कृतियाँ आईबीरियन द्वीप की है। यह संस्कृति दक्षिण इटली तथा उत्तर पश्चिम अफ्रीका में भी प्राप्त होती है। पश्चिम यूरोप में आजीलियन संस्कृति का विकास हुआ, इसके पश्चात् आर्डेनोशियन संस्कृति विकसित हुई। उत्तर पूर्व आयरलैण्ड तथा दक्षिण पूर्व स्काटलैण्ड में एक स्थानीय संस्कृति लार्नीनियन

विकसित हुईं, आईबीरियन किचिन मिडेन तथा अर्टबोल संस्कृतियाँ उत्तरी यूरोप में विकसित हुई।

मध्य पाषाण काल; तिथि :

मध्य पाषाण काल की तिथि का आंकलन करना मुश्किल है, क्योंकि विभिन्न स्थानों पर उच्च पुरा पाषाण कालीन संस्कृति देर तक प्राप्त होती हैं तो कुछ स्थानों पर मध्य पाषाण काल के अवशेष प्राप्त होने लगते हैं, मेसोपोटामिया में मध्य पाषाण काल की संस्कृति 18000 ई.पू. में प्राप्त होती है, परंतु डेनमार्क में उच्चपुरा पाषाण कालीन संस्कृति 8000 ई.पू. तक प्राप्त होती है। मध्य पाषाण काल का अंत भी विभिन्न स्थानों पर अलग–अलग रहा है जैसे पश्चिम एशिया में 6000–7000 ई.पू. में नव पाषाण संस्कृतियों की प्राप्ति प्रारंभ होती जाती है परंतु यूरोप में कई हजारों वर्षों बाद नव पाषाण काल प्रारंभ होता है।

भारत वर्ष में मध्यपाषाण काल का प्रारंभ लगभग 15000 ई.पू. निर्धारित किया गया हैं मध्य पाषाण कालीन उपकरण नव पाषाण काल की सतहों में भी पाये गये हैं। अतः निश्चित रूप से कहना कठिन है कि मध्यपाषाण काल की समाप्ति कब हुई।

मध्य पाषाण काल में मानव जीवन :

इस काल के मानव का अधिकांश समय उदर पूर्ति हेतु शिकार करने कंद मूल, फल, बीज आदि को इकट्‌ठा करने में जाता था। इस काल के मानव ने बड़े जानवरों के शिकार के स्थान पर, छोटे जानवर, जैसे हिरण, बारहसिंगा, खरगोश आदि का शिकार करना शुरू कर दिया था। छोटे जानवरों के शिकार करने से मानव के सामाजिक जीवन पर गहरा प्रभाव पड़ा, बड़े जानवरों के शिकार हेतु मानव को बड़े समूहों में रहना पड़ता था परंतु, अब मानव समूहों का आकार छोटे होने लगा। अब उसके पास समय कम बचता जिसका प्रभाव कला पर पड़ा, उच्च पुरा पाषाण काल के समान इस काल में चित्रकला का उतना विकास नहीं दिखता। चित्र तो इस काल में भी प्राप्त होते हैं पर उतने भव्य नहीं हैं। चित्र बनाने में सिर्फ बाहरी रेखाओं को ही खींचा गया है, वैसे आगे चलकर इन्हीं चित्रों ने लिपि का रूप ले लिया था। इस काल में मानव समूह छोटा अवश्य हो गया था परंतु कुत्ते के रूप

में उसे एक सहयोगी भी मिल गया, जिसे उसने पालतू बना लिया। कुत्ता शिकार आदि में मानव का सहयोग करता इस काल के मानव ने नौका का भी निर्माण किया था जिसकी मदद से वह नदियों, जलाशयों में से मछली, कछुऐ, घोंघे आदि पकड़ता होगा। इस काल में मानव ने मृद्‌भाण्ड़ बनाना भी प्रारंभ कर दिया था। ये मृद्‌भाण्ड़ हस्तनिर्मित हैं।

इस काल में मनुष्य गुफाओं के अतिरिक्त वर्ष के कुछ दिनों में खुले मैदानों में चमड़े के तंबू बनाकर रहता था, बाँदरबेला (श्रीलंका) में ऐसे प्रमाण उपलब्ध हुए हैं। पेस (हालैण्ड) में इस काल के शैलचित्रों में नाव का चित्रांकन प्रमाणित करता है, कि लोग नाव से भलीभाँति परिचित थे।

शैलचित्रों के अंकन हेतु प्राकृतिक रंगों यथा गेरू, हेमेटाइट, छुई मिट्टी, पीली मिट्टी, वृक्षों के रस और पत्तियों के रस का उपयोग किया गया, चित्रों को स्थायी बनाने के लिए उसमें गोंद की चर्बी का मिश्रण किया जाता था, और पौधों की कोमल टहनी को कुचलकर ब्रश निर्मित किये जाते थे। चोपनीमाण्ड़ों, मिर्जापुर और प्रतापगढ़ (उ.प्र.) महगढ़ा और लोंहदानाला के उत्खनन द्वारा यह तथ्य सामने आया है, कि मृतकों की कब्र में शव के साथ हिरण के अवशेष भी प्राप्त हुए।

नव पाषाण काल :

मानव के विकास क्रम में यह काल अपना अहम् स्थान रखता है। उसने अब घुमक्कड़ जीवन को त्याग दिया और स्थायी जीवन जीना शुरू किया। उसने झोपड़ियों का निर्माण, कृषि तथा पशु पालन प्रारंभ किया। खाद्यान्न संग्रह हेतु मृद्‌भाण्ड़ों का निर्माण प्रारंभ कर दिया। हस्त उद्योगों का विकास किया।

भारत में नव पाषाण कालीन स्थलों से प्राप्त अवशेषों में तथा संस्कृतियों की तिथियों में विविधिता परिलक्षित होती है। अतः विद्वानों ने इन विविधताओं को ध्यान में रखकर नवपाषाण कालीन संस्कृति का एक साथ वर्णन करके उन्हें अलग–अलग क्षेत्रों में विभाजित किया है। बी.डी. कृष्णस्वामी ने 1960 में सर्वप्रथम इस संस्कृति को चार क्षेत्रों में वर्गीकृत किया था। परंतु बी.के. थापर ने 1964 में इस संस्कृति को तीन वर्गों, उत्तरी, दक्षिणी, पूर्वी क्षेत्रों में वर्गीकृत किया।

आलचिन दम्पत्ति ने 1968 में उन्हें पुनर्विभाजित किया :

1. उत्तर भारत की नवपाषाणिक संस्कृति
2. विन्ध्य क्षेत्र की नवपाषाणिक संस्कृति
3. दक्षिण भारत की नवपाषाणिक संस्कृति
4. मध्य गंगाघाटी की नवपाषाणिक संस्कृति
5. पूर्वोत्तर भारत की नवपाषाणिक संस्कृति

इस संस्कृति के साक्ष्य जम्मू–काश्मीर राज्य की झेलम घाटी के तीन प्रमुख स्थानों, बुर्जहोम, मार्तण्ड तथा गुफाकला से प्राप्त होते हैं, इन स्थानों पर उत्खनन से तीन संस्कृति काल प्रकाश में आये हैं :

1. नवपाषाण काल
2. महापाषाण काल
3. ऐतिहासिक काल

काश्मीर क्षेत्र में नवपाषाण काल के तीन स्तरों में प्रमाण प्राप्त हुए हैं।

प्रथम स्तर :

इससे पता चलता है कि यहाँ के निवासी गड्ढे खोदकर रहते थे, गड्ढे में उतरने के लिए सीढ़ियाँ होती थीं, और उसका मुँह सकरा तथा जिसके ऊपर छप्पर बनाया जाता था, जो घास–फूँस का होता था। गड्ढे के बाहर चूल्हे के साक्ष्य प्राप्त हुए।

गुफाकला से मिट्टी के बर्तन के प्रमाण प्राप्त नहीं हुए हैं, परंतु पशुपालन के साक्ष्य प्राप्त हुए हैं। गेहूँ, जौ एवं मसूर के दाने प्राप्त हुए हैं, परंतु कृषि कार्य से संबंधित उपकरण प्राप्त हुए हैं। ट्रेप पत्थर पर निर्मित कुल्हाड़ियाँ, बेधक, गदाशीर्ष तथा सिलोढ़े प्राप्त हुए तथा अस्थि उपकरण भी प्राप्त हुए हैं।

द्वितीय स्तर :

इस काल से प्राप्त अवशेषों में बदलाव प्राप्त होता है, इस काल के निवासी घर बना कर रहने लगे थे। घरों को आयताकार बनाया जाता था, कंकड़, मिट्टी से फर्श निर्मित किये गये थे। बुर्जहोम में चबूतरे मिले हैं, तथा मिट्टी की दीवारों से कमरों का निर्माण किया गया था। इन घरों से अण्डाकार समाधियाँ प्राप्त हुई हैं।

मृतक को गेरू रंग से रंगा गया है, तथा कुछ समाधियों में मृतक के साथ पशु को भी दफनाया गया है, यहाँ हस्त निर्मित मृद्भाण्ड़ प्राप्त हुए हैं, जो मोटे हैं तथा ठीक से पकाये नहीं गये हैं। ये घूसर रंग के हैं तथा कटोरे, घड़े तथा तसले प्राप्त हुए हैं। पशुपालन तथा कृषि के प्रमाण भी प्राप्त हुए हैं।

तृतीय स्तर :

इस स्तर से प्राप्त नवपाषाण कालीन संस्कृति को उच्च नवपाषाण काल कहा गया है। इस स्तर से प्राप्त घरों के फर्श को चूने के लेप से बनाया गया था। घरों के पास गड्ढे प्राप्त हुए हैं, जिनमें संभवतः कचरा डाला जाता था। मृद्भाण्ड परंपरा में भी विविधता प्राप्त होती हैं एवं धूसर, हल्के लाल रंग तथा गहरे काले रंग के मृद्भाण्ड प्राप्त होते हैं। मृद्भाण्ड प्रकार में गोल कटोरे, गहरे कटोरे, घड़े, थालियां मिली हैं। मिट्टी की बनी हुई चूड़ियां भी प्राप्त हुई हैं। यहाँ से भारी पाषाण उपकरण प्राप्त नहीं होते हैं लेकिन बेधक, बाणाग्र, गोल पाषाण, सिल–लोढ़े, तकुए प्राप्त हुए हैं। पशुपालन तथा कृषि के प्रमाण प्राप्त हुए हैं।

तिथि : विभिन्न साक्ष्यों के आधार पर इस संस्कृति को 2500 ई.पू. से 1400 ई.पू. के मध्य स्थापित किया गया हैं।

नव पाषाण काल में मानव जीवन :

नव पाषाण काल में मानव ने कृषि, पशुपालन, मृद्भाण्ड, वस्त्र निर्माण आदि का आविष्कार किया। इन आविष्कारों ने मानव जीवन पर कुछ प्रत्यक्ष तो कुछ अप्रत्यक्ष प्रभाव डाले जैसे कृषि कार्य में मानव को स्थाई जीवन प्रदान किया है। वह एक स्थान पर लंबे समय तक रहने लगा, उद्र पूर्ति हेतु उसे अन्य कृषि से मिलने लगा। जिसका वह संग्रहण करने लगा। डेन्यूब नदी के किनारे नव पाषाण काल के लोग खड़े खंबों पर अन्नागार बनाने लगे थे। इजिस्ट गोबर से लिपे हुए गड्ढे प्रयोग किये गये है। मेसोपोटामिया में अनाज के बड़े–बड़े मिट्टे के मटके तैयार किये जाते थे।

कृषि तथा पशुपालन ने जनता वृद्धि में महत्वपूर्ण योगदान दिया। इस बात के प्रमाण उपलब्ध हुए है कि नव पाषाण काल के मानव समूह पुरापाषाण काल के मानव समूहों से बड़े और संख्या में अधिक थे। इन समूहों में काल विभाजन भी हो

गया था। महिलायें खाना बनाने, कंद–मूल–फल इकट्ठा करने, मृद्भाण्ड बनाने, वस्त्र बनाने आदि कार्य किया करती थी। पुरूष वर्ग कृषि, पशुपालन, शिकार आदि कार्य किया करता था। बुजुर्ग, बच्चे खेतों की पशु–पक्षियों से रक्षा, पशुओं को चारागाह ले जाना आदि कार्य करते थे।

नवपाषाण काल में मानव ने निवास हेतु मकान का निर्माण किया था। पश्चिम एशिया तथा यूरोप में प्रारंभिक मकान मिट्टी तथा लट्ठों के बनाये गये बाद में कच्ची मिट्टी के मकान बनने लगे। मिश्र में मकान बनाने रीड का प्रयोग किया गया था। इजिप्ट तथा दक्षिण में मोसोपोटामिया के दलदल में रहने वाले लोग लकड़ी के लट्ठों से झोपड़ियाँ बनाते थे। ईराक में जारमो से 4500 ई.पू. के बड़े तथा मजबूत घर प्राप्त हुए है। जिनमें कई कमरे बने थे और कच्ची ईटों का प्रयोग हुआ है। स्विटजरलैंड में झील में लकड़ी के लट्ठे गाड़कर उनके ऊपर घर बनाने के प्रमाण प्राप्त हुए है।

इंग्लैंड, फ्रांस तथा पश्चिम यूरोप में छोटे–छोटे ग्राम, इस काल से प्राप्त हुए है। जिनमें आठ से लेकर पचास मकान प्राप्त हुए हैं।

नवपाषाण काल में मानव की सामाजिक संरचना के बारे में विद्वानों का अनुभव है, कि ये समूहों में रहते थे, जिनका एक मुखिया होता होगा। मुखिया का चुनाव वंशानुगत, ताकत या किस विधि से होता था, यह अभी पता नहीं है। इन कबीलों का एक चिन्ह भी हुआ करता था। जो किसी पशु–पक्षी की आकृति हुआ करती थी। मुखिया का कार्य कबीले की अन्य कबीलों से सुरक्षा, सामाजिक न्याय व्यवस्था आदि रहता होगा।

धार्मिक भावना का विकास इस काल में अवश्य हो गया था। पृथ्वी से मानव को अन्न आदि प्राप्त होता था। भूमि की उर्वरा शक्ति बनी रहे, संभवतः इस कारण मातृदेव की पूजा की जाती होगी। इंग्लैंड बालकान प्रदेश, अन्नातोलिया प्रदेशों से तथा मिट्टी तथा पाषाण की शिश्न मूर्तियाँ मिली है। संभवतः इन स्थानों पर उत्पादन प्रक्रिया में पुरूष पर अधिक बल दिया जाता होगा। मृद्भाण्ड आदि पर कुछ ज्यामितिक आकृतियाँ प्राप्त हुई है। विद्वानों का अनुमान है कि ये आकृतियाँ जादू–टोने से संबंधित है। क्योंकि आज भी आदिवासी इस प्रकार की आकृतियों का

प्रयोग जादू–टोने में करते है। मेरिम्द में पाषाण की लघु कुल्हाड़ियाँ प्राप्त हुई है जिनमें एक छेद है। इसे वे लोग ताबीज जैसा गले में धारण करते होगे। उनका यह विश्वास रहा होगा, कि इस प्रकार के लघु अस्त्र शरीर पर धारण करने से उसकी शक्ति पहनने वाले को प्राप्त हो जाती है।

बैतूल जिले की प्रागैतिहासिक संस्कृतियाँ :

बैतूल जिले की भू–आकृति सघन वनों तथा भीतरी क्षेत्रों में आवागमन के साधनों के अभाव में यहाँ के प्राक् इतिहास से संदर्भित अन्वेषणों का अभाव रहा हैं बैतूल जिला गजेटियर के 1990 के संस्करण में पृष्ठ संख्या 33 में उल्लिखित है कि जिले में प्रागैतिहासिक काल के अवशेष अनुउपलब्ध हैं।

किंतु, डॉ. हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर के पुरातत्व विभाग के अध्यक्ष प्रोफेसर विवेकदत्त के निर्देशन में वर्ष 2004–05 में जो अनुसंधान कार्य हुआ है, उसमें प्रागैतिहासिक पुरास्थल और उपकरण बड़ी संख्या में प्राप्त हुए हैं। प्राप्त प्रमाणों के आधार पर बैतूल जिले की प्रागैतिहासिक संस्कृतियों को निम्न प्राप्त पाषाणकाल, मध्यपुरा पाषाण काल, उच्च पुरापाषाण काल तथा मध्यपुरापाषाण काल में विभाजित किया गया है। नवपाषाण काल के अवशेष इस जिले में प्राप्त नहीं हुए हैं।

निम्न पुरापाषाणकाल :

जिले में निम्न पुरापाषाण युगीन स्थलों की संख्या नगण्य है। प्रतीत होता है कि उपकरण निर्माण हेतु उपयुक्त प्रस्तर यथा बलुआ पत्थर, क्वार्टजाइट, फ्लिंट उपलब्ध न होने के कारण इस भू–भाग में निम्न पुरापाषाण युगीन प्रारंभिक उपकरण निर्माता ने अल्पकालीन प्रवास किया। दो पुरास्थलों से जो उपकरण पाये गये हैं। वे डोलेराइट डाइक्स पर निर्मित हैं और बेडौल हैं। उनके आकार अनियमित हैं और वे बहुत घिसे हुए हैं।

पतरी नदी के तट पर गुढ़गाँव के समीप एक मूठछुरा और दो खुरचनी प्राप्त हुए हैं। उपकरण डोलेराइट डाइक्स पर निर्मित हैं और नदी में लुढ़कने के कारण अत्यंत घिसे हुए हैं। खेड़ी–भैंसदेही मार्ग पर खेड़ा से 6 किलोमीटर पर स्थित झल्लार ग्राम से गुढ़गाँव की दूरी 4 किलोमीटर है। इस पाषाणकाल का दूसरा

पुरास्थल बैतूल–अटनेर मार्ग पर बैतूल से 16 किलोमीटर दूर कलबा ग्राम से 6 किलोमीटर पर ताप्ती नदी पर कोलगाँव घाट है। नदी पर निर्मित पुल के आस–पास डोलेराइट पर निर्मित बड़े–बड़े मूठछुरे मिले हैं जो बहुत घिसे हुए हैं।

मध्य पुरापाषाणकाल :

मध्य पुरापाषाणकालीन उपकरण भी केवल दो स्थलों जूनापानी तथा झिरी में प्राप्त हुए हैं। उपकरणों की संख्या बहुत कम हैं इस काल का कोई उपकरण, निर्माण स्थल (फैक्टरी साइट) नहीं मिला है, उपकरण निर्माण प्रविधि, प्रयुक्त पत्थर और आकार के संदर्भ में इस काल के उपकरण निम्नपुरापाषाणयुगीन उपकरणों से भिन्न है। प्रस्तर फलक (फ्लेक) पर निर्मित ये उपकरण आकार में अपेक्षाकृत छोटे, सुडौल और बेहतर तकनीक द्वारा निर्मित हैं। खुरचनी, क्रोड और अग्रास्त्र पर द्वितीयक शल्कीकरण और पुनर्गढ़न दृष्टिगोचर होता हैं अधिकांश उपकरणों की केवल ऊपरी सतह पर काट–छाँट की गई है, निचली सतह पर काट–छाँट के उदाहरण कम है।

कुछ उदाहरण संयुक्त उपकरण के भी हैं। जलवायु परिवर्तन के फलस्वरूप भूमि की ऊपरी सतह, वनस्पति और जीव–जगत में इस काल में परिवर्तन हुआ, पहले की तुलना में मानव मस्तिष्क का विकास हुआ, और उपकरण निर्माण में वह प्रवीण हुआ। फलस्वरूप जीविकोपार्जन के साधनों में वृद्धि हुई। अलग–अलग उपयोग के लिए अलग–अलग उपकरण निर्मित करने की बजाय, बहुउपयोगी संयुक्त उपकरण बनाये गये।

मुलताई–बैतूल मार्ग पर मुलताई से 14 किलोमीटर दूर एक नाले की रेत में जूनापानी ग्राम के समीप उपकरण मिले हैं। चर्ट पत्थर पर निर्मित खुरचनी की संख्या अधिक है। एक पार्श्वीय तथा द्विपार्श्वीय दोनों प्रकार की खुरचनी हैं। नर्ट और अगेट पत्थर पर उपकरण बनाये गये हैं।

दूसरा स्थल झिरी (बुड़बुड़ा) प्रभातपट्टन नामक प्रसिद्ध स्थान से लगभग 3 किलोमीटर दूर है, वहाँ नाले के तट पर खुरचनी उपकरण प्राप्त हुए हैं। इनकी संख्या मात्र तीन हैं, तीनों उपकरण चर्ट पर निर्मित हैं, जिनके दोनों तलों पर काट–छाँट कर कार्यांग बनाया गया है।

उच्च पुरापाषाण काल :

उच्च पुरापाषाण काल में प्रज्ञमानव (होमो सेपियन्स) का उद्‌भव हुआ, जिसका मस्तिष्क अधिक विकसित था और शारीरिक संरचना आधुनिक मानव के समान थी। शीत की अधिकता के परिणामस्वरूप मनुष्य ने गुफाओं के चमड़े के तम्बू तथा घास–फूस से बने झोपड़े में शरण ली। जलवायु परिवर्तन के कारण हाथी, भैंसा, घोड़ा, बैल–गाय, भालू और सुअर जैसे विशाल पशुओं की बाढ़ सी आ गयी। इन विशाल पशुओं के आखेट तथा उनसे सुरक्षा के लिए मनुष्य ने समूह में रहना प्रारंभ किया। विशाल पशुओं के आखेट के लिए पैने और कारगर उपकरणों की आवश्यकता प्रतीत हुई। इसीलिए विकसित मस्तिष्क वाले उस मानव ने पत्थर के लंबे ब्लेड, तक्षणी, आरी, बाणफलक, छेनी जैसे उपयोगी उपकरण निर्मित किये और उन्होंने लकड़ी अथवा हड्डी की मूल में लगाकर उनका उपयोग करने लगे। पशु–अस्थियों के अस्त्र–शस्त्र भी बनाये जाने लगे। मध्यप्रदेश के डिण्डौरी जिले में स्थित घोड़ामाड़ा गुफा की खुदाई में प्रोफेसर बी.डी. झा को उच्चपाषाणयुगीन अस्थि और पशुभृंग पर बने उपकरण प्राप्त हुए हैं।[1]

बैतूल जिले में झरकाबाड़ी तथा जटाशंकर नामक स्थलों में प्रस्तर उपकरण निर्मित करने की कार्यशालाएँ (फैक्टरी साईट्स) प्रोफेसर झा द्वारा प्रकाश में लायी गयी है। झरकाबाड़ी आटनेर मार्ग पर बैतूल से 7 किलोमीटर दूर तथा जटाशंकर बैतूल से 13 किलोमीटर दूर राठीपुर ग्राम के निकट है। भरकावाड़ी में नदी की रेत में चर्ट और जास्पर पत्थरों पर बने खुरचनी, तक्षणी, बाणफलक, प्रस्तर हथौड़ा ब्लेड जैसे उपकरणों के अतिरिक्त चर्ट और जास्पर के बड़े–बड़े प्रस्तरखण्ड मिले हैं। जिनसे कच्चा माल निकालकर उपकरण बनाये गये हैं। चर्ट और जस्पर के छोटे–छोटे टुकड़ों के साथ–साथ अधबने उपकरणों की प्राप्ति से प्रमाणित है, कि इस स्थल पर फैक्टरी साइट थी। ब्लेड पतले और लगभग ढाई–तीन इंच लंबे हैं। तक्षणी का उपयोग हड्डी, लकड़ी और चट्टान पर उत्खचन के द्वारा रेखाकृतियों के निर्माण में होता था।

जटाशंकर तीन पहाड़ियों के मध्य ऊँचाई पर जल स्रोत के समीप स्थित है। यहाँ उच्च पुरापाषाणयुगीन उपकरणों के साथ मध्य पाषाणयुगीन भी प्राप्त हुए हैं

जिनके द्वारा प्रदर्शित होता है, कि उच्च पुरापाषाणकाल में परवर्ती मध्यपाषाणयुगीन मानव ने भी इस स्थल पर किया और दोनों संस्कृतियों के मध्य परस्पर संवाद बना रहा। जल की उपलब्धि, ऊँचाई पर स्थित होने के कारण सुरक्षा तथा कच्चे माल (पत्थर) बाहुल्य के फलस्वरूप यह स्थल लगातार दो संस्कृतियों का कार्यस्थल रहा। जटाशंकर में जस्पर, चर्ट और क्वार्ट्ज पर बने उपकरणों में प्रस्तर हथौड़ा, लंबे ब्लेड, खुरचनी, तक्षणी और बाणफलक उल्लेखनीय हैं।

झिरी (प्रभात पट्टन से 3 किलोमीटर), कोलगाँव (बैतूल–आटनेर मार्ग पर बैतूल से 16 किलोमीटर) माण्डवी बैतूल मार्ग पर आटनेर से 6 किलोमीटर जबरा रोड पर, उमरिया (बैतूल से 3 किलोमीटर) भैंसदेही (तहसील मुख्यालय) रिझाना (बैतूल चिचौली मार्ग पर 37 किलोमीटर) पाबल (प्रभात पट्टन से 2 किलोमीटर) में इस काल के उपकरण पाये गये हैं।

इस काल में मनुष्य ने समूह में एक स्थल पर स्थायी रूप से निवास प्रारंभ कर दिया था। इसके प्रमाण मण्डला और डिण्डौरी जिलों में अनेक स्थलों में प्राप्त हुए हैं। अनगढ़ पत्थरों का लगभग गोलाकार फर्श बनाकर उसके चारों और बड़े–बड़े प्रस्तर खण्ड गड़ाये जाते थे और ऊपर घास–फूस का छप्पर बनाया जाता था।[2]

मध्य पाषाणकाल :

इस काल में उपकरण पाबल, जटाशंकर, कालेगाँव, उमरिया, गुढ़गाँव के समीप, भैंसदेही, रंभा (बैतूल–चिचौली मार्ग पर बैतूल से 34 किलोमीटर) तथा जूनापानी (बैतूल मार्ग पर मुलताई से 34 किलोमीटर) में पाये गये हैं। उपकरण निर्माण स्थल जटाशंकर में प्रकाश में लाया गया है। जटाशंकर में चर्ट और जस्पर के ऐसे बड़े प्रस्तर अगेट और क्वार्टज पर बने हैं। छेनी, ब्लेड, अर्धचंद्र, खुरचनी और क्रोड़ प्रमुख उपकरण हैं।

उपकरण लघु आकार के तीक्ष्ण और सुडौल हैं। उपकरण इतने छोटे हैं कि उन्हें हाथ में पकड़कर उनका उपयोग नहीं किया जा सकता। मूढ़ में फँसाकर इन उपकरणों में चाकू, हंसिया, बाणाग्र और आरी की भाँति इस्तेमाल किया जाता था। जलवायु परिवर्तन तथा बड़ी हुई जनसंख्या के निदान हेतु मूलतः प्रकृतिजीवी मनुष्य

ने जंगली चावल, झड़बेरी और बार्ली संग्रह के साथ–साथ जलीय, यथा कछुआ, मछली और घोंघा का आखेट प्रारंभ किया। पशुपालन का सूत्रपात भी इसी काल में हुआ। इस पाषाण युग में खाद्य सामग्री को कूट–पीस कर उसका उपभोग किया जाता था, यह विभिन्न स्थलों की खुदाई में इस काल की सतह में पाये गये सिल–बट्टों द्वारा प्रमाणित हुआ है। पेनगवाँ जैसे पुरास्थलों में मध्यपाषाण कालीन शैलचित्रों के समीप बनी हुई ओखली भी इस अनुमान की पुष्टि करती है।

श्रम विभाजन का प्रारंभ हो गया था। एक समूह में रहने वाले मनुष्यों ने परस्पर कार्य बाँट लिया था। कुछ लोग भोजन एकत्र करने का प्रयत्न करते थे, तो दूसरे उपकरण निर्माण हेतु उपयोगी पत्थर जुटाते थे। तीसरा समूह जो शारीरिक शक्ति में कुछ कमजोर किंतु अधिक अनुभवी था। सुडौल, तीक्ष्ण और बेहद उपयोगी लघु उपकरणों को गढ़ता था।

उपकरण निर्माण में शक्ति के मुकाबले बुद्धि का उपयोग अधिक किया जाने लगा। चर्ट के बड़े प्रस्तर खण्डों को आग में तपाकार तोड़ने के बाद उन पर छोटे उपकरण निर्मित किये जाते थे। उपकरण निर्माण हेतु, प्रस्तर और लकड़ी के बेलनाकार हथौड़े प्रयुक्त होते थे। निपीड़ प्रविधि, फ्लूटिंग तथा बैकिंग प्रविधियों द्वारा निर्मित लघु उपकरणों के कार्यांग पुनर्गढ़न के द्वारा तीक्ष्ण बनाये जाते थे। ब्लेड प्रायः, अज्यामितिक है। कुछ ऐसे ब्लेड, जिनके एक पार्श्व गढ़े गये हैं और दूसरा पार्श्व अनगढ़ तथा मोटा है, लकड़ी अथवा हड्डी की मूठ में लगाकार प्रयोग में लाये जाते थे। क्रोड में कुछ शंकु आकार में हैं, कुछ समतल हैं। अधिकांश क्रोडों के सभी मुखों पर शल्कीकरण है। खुरचनी के दोनों तलों पर काट–छाँट की गई हैं पार्श्व खुरचनी, अंत खुरचनी, धनुषाकार, चक्राकार खुरचनी इस जिले में प्राप्त हुई हैं। अग्रास्त्र लगभग त्रिकोणाकार हैं। जिन्हें कार्यांग के समीप पुर्नगढ़न कर तीखा बनाया गया है।

मध्य पाषाणकालीन मानवों के मध्य श्रम विभाजन के कारण खाद्य सामग्री जुटाने की समस्या पिछले कालों की तुलना में कम कठिन थी। अवकाश के क्षणों में अब मनुष्य आवासीय शैलश्रयों में शैल चित्र बनाने लगा, शैलचित्रों के आरेखन में प्राकृतिक रंगों यथा हेमेटाइट पत्थर, गेरव, पीली मिट्टी, खड़िया मिट्टी, पत्तियों के रस

और कोयले का उपयोग किया गया है। रंग के घोल को गाढ़ा और टिकाऊ बनाने के लिए उसमें चर्बी मिलाई जाती थी। पशु, पक्षी, पेड़–पौधे, आखेट, अनाज–कूटने पीसने, बोझा ढोने इत्यादि के दृश्य चित्रों में दर्शाये गये हैं। शैलचित्रों के द्वारा तत्कालीन मानव जीवन के विविध पक्षों पर प्रकाश पड़ा है। बैतूल जिले में अब तक शैलचित्र प्राप्त नहीं हुए हैं।

नवपाषाण युगीन साक्ष्य भी इस क्षेत्र में उपलब्ध नहीं है।

बैतूल जिले में आद्य इतिहास संबंधी अवशेष उपलब्ध नहीं है। प्रत्यक्ष साहित्यिक स्रोतों का भी सर्वथा अभाव है।

आद्य इतिहास

प्राचीन भारतीय ग्रंथों के अनुसार यह क्षेत्र पाण्डव सहदेव ने दक्षिण विजय अभियान में हस्तगत कर लिया था। बैनगंगा (प्राचीन वेण्वा/वेणा/वेव्या) का निकटवर्ती यह क्षेत्र था। "स विजित्य दुरापार्ष भीषकं माद्रिनंदन कोसलाधिपम् चैव तथा वेणातटाधिपम"[3] बैतूल जिले में स्थित मुलताई से उद्भूत ताप्ती नदी की उपनदी पयोष्णी है। ताप्ती और पयोष्णी का उल्लेख प्राचीन साहित्य में साथ–साथ हुआ है। ताप्ती, पयोष्णी निर्विध्या प्रमुख श्रक्ष संभवा[4] इसी प्रकार श्रीमद्भागवत में भी इन दोनों का साथ–साथ उल्लेख हुआ है। वस्तुतः दोनों नदियाँ ऋक्ष पर्वत से उद्भूत होकर अलग–अलग प्रभावित होते हुए आगे जाकर मिल जाती हैं। महाभारत काल में राजा नृग ने पयोष्णी नदी के तट पर अनेक यज्ञ किए थे।[5] महाभारत काल में निषाधपति नल का भी इस क्षेत्र पर अधिकार रहा है। बैतूल जिले में स्थित असीर गढ़ का प्राचीन नाम अश्वत्थामा गिरि था।[6] प्रवर सेन द्वितीय के पदृण (प्रभात पट्टन जिला बैतूल) ताम्रपत्र में अश्वत्थखेटक ग्राम के दान का उल्लेख हुआ है यह अश्वत्थखेटक अश्वत्थामा गिरि (असीरगढ़) के निकट ही स्थित कोई ग्राम है।[7] इस प्रकार भू–भाग का घनिष्ठ संबंध महाभारत काल से सिद्ध होता है। पचमढ़ी, जो बैतूल जिले का निकटवर्ती है, उससे भी पाण्डवों का संबंध अनुश्रुतियों द्वारा प्रमाणित होता है। होशंगाबाद नगर के समीप आदमगढ़ तथा पचमढ़ी के आद्य ऐतिहासिक शैलचित्रों द्वारा उस क्षेत्र की आद्य ऐतिहासिक संस्कृति के स्वरूप का आभास मिलता है। निकटवर्ती बालाघाट जिले के गुगेरिया में आद्य ऐतिहासिक ताम्रनिधि

संस्कृति के अवशेषों की प्राप्ति द्वारा भी इस भू–भाग के आद्य इतिहास पर प्रकाश पड़ा है।[8] परवर्ती ताम्रपाषाण संस्कृति तथा चित्रित धूसर मृद्‌भाण्ड़ संस्कृति के अवशेष बैतूल जिले में प्राप्त नहीं हुए हैं।

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

इस जिले का इतिहास, मध्यप्रदेश के इतिहास में महत्वपूर्ण स्थान रखता है। इस जिले की भू–आकृति सघन वनों तथा आवागमन के साधनों के अभाव में प्रागैतिहासिक अन्वेषणों का अभाव रहा है। 2004–05 ईस्वी में डॉ. हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर के प्रोफेसर विवेकदत्त झा के निर्देशन में किए गए बैतूल जिले के पुरातात्त्विक पुरास्थल तथा उपकरण प्रभूत संख्या में प्राप्त हुए। प्राप्त प्रमाणों के आधार पर बैतूल जिले की प्रागैतिहासिक संस्कृतियों को पुरापाषाणिक संस्कृति तथा मध्य पाषाणिक संस्कृति में विभाजित किया गया है। सर्वेक्षण के दौरान तथा पूर्व में भी नवपाषाणिक संस्कृति के साक्ष्य इस जिले से प्राप्त नहीं हुए हैं।

बैतूल जिले की पुरापाषाणिक संस्कृति को भी तीन उपभागों में विभाजित किया गया है। निम्न पुरापाषाण काल, मध्यपुरापाषाण काल तथा उच्च पुरापाषाण काल। जिले में निम्न पुरापाषाण युगीन स्थलों की संख्या नगण्य है। पतरी नदी के तट पर स्थित गुढ़गाँव के समीप तथा ताप्ती नदी के तट पर स्थित कोलगाँव घाट, मात्र इन दो स्थलों पर निम्न पुरापाषाण काल के उपकरण (मूठछुरा तथा खुरचनी) प्राप्त हुए हैं। मध्यपाषाणिक उपकरण भी जूनापानी तथा झिरी मात्र इन दो स्थलों से प्राप्त हुए हैं उपकरण निर्माण प्रविधि, प्रयुक्त पत्थर और आकार में इस काल के उपकरण निम्न पुरापाषाणकाल के उपकरणों से भिन्न हैं। प्रस्तर फलक पर निर्मित ये उपकरण आकार में अपेक्षाकृत छोटे, सुडौल और बेहतर तकनीक द्वारा निर्मित हैं। खुरचनी, क्रोड और अग्रास्त्र फलक पर निर्मित उपकरण हैं। उच्च पुरापाषाण कालीन प्रज्ञमानव द्वारा पशुओं के आखेट हेतु, पैने और कारगर उपकरणों का निर्माण किया गया। पत्थर के लंबे ब्लेड, तक्षणी, आरी, बाणफलक, छेनी जैसे उपयोगी उपकरण निर्मित किए गए। जिले के झरकावाड़ी तथा जटाशंकर नामक स्थलों प्रस्तर उपकरण निर्मित करने की कार्यशालाएँ (फैक्टरी साइट्स) प्रो. विवेकदत्त झा द्वारा सर्वेक्षण के दौरान प्रकाश में लायीं गयीं। झरकावाड़ी आटनेर मार्ग पर बैतूल से 7

कि.मी. तथा जटाशंकर बैतूल से 13 कि.मी. राठीपुर ग्राम के निकट है। चर्ट और जास्पर पत्थर पर निर्मित खुरचनी, तक्षणी, बाणफलक, प्रस्तर, हथौड़ा, ब्लेड जैसे उपकरणों के अतिरिक्त चर्ट और जास्पर के बड़े–बड़े प्रस्तर खण्ड मिले हैं। चर्ट और जास्पर के छोटे–छोटे टुकड़ों के साथ–साथ अधबने उपकरणों की प्राप्ति से पता चलता है, कि इन स्थलों पर फैक्टरी साईट्स थीं। इन फैक्टरी साइट्स के अतिरिक्त उच्च पुरापाषाणिक उपकरण झिरी, कोलगाँव घाट, माण्डवी, उमरिया, भैंसदेही, रिझाना तथा पावल इत्यादि स्थलों से प्राप्त हुए हैं।

मध्यपाषाणकालीन संस्कृति के मानव भी जिले में निवास करते थे, जिनके साक्ष्य, पायल, जटाशंकर, कालेगाँव, उमरिया, गुढ़गाँव के समीप रंभा, जूनापानी में उपकरणों के रूप में पाये गये हैं। जटाशंकर मध्य पाषाणिक उपकरणों की फैक्टरी साइट्स मिली है। इस काल के उपकरण लघु आकार के तीक्ष्ण तथा सुडौल है। उपकरणों को मूँठ में फँसाकर चाकू, हँसिया, बाणफलक और आरी की भाँति प्रयोग में लाया जाता था। उपकरण निर्माण में बुद्धि तथा कौशल का प्रयोग अधिक होने लगा था।

बैतूल जिले में अभी तक नवपाषाण युगीन साक्ष्य अभी तक प्राप्त नहीं हुए हैं। शैलचित्रों के साक्ष्य भी प्राप्त नहीं हुए हैं।

बैतूल जिले के आद्य इतिहास के संबंध में साहित्यिक संदर्भों पर मुख्यतः आश्रित रहना पड़ता है। पुराणों तथा श्रीमद्भागवत में ताप्ती तथा इसकी उपनदी पयोष्णी का उल्लेख मिलता है। महाभारत में उल्लेख मिलता है कि महाभारत काल में राजा नल ने पयोष्णी नदी के तट पर अनेक यज्ञ कराये थे। बैतूल जिले में स्थित असीरगढ़ का प्राचीन नाम अश्वत्थामा गिरि था। इस बैतूल जिले के भू–भाग का संबंध निश्चित रूप से महाभारत कालीन घटनाओं से सिद्ध होता है।

परवर्ती ताम्रपाषाण संस्कृति तथा चित्रित धूसर मृद्भाण्ड संस्कृति के अवशेष इस जिले में प्राप्त नहीं हुए हैं।

ऐतिहासिक युग में बैतूल जिले का भू–भाग मौर्य साम्राज्य में सम्मिलित रहा होगा। अशोक के शिलालेखों से ज्ञात होता है कि मौर्य साम्राज्य में सुदूरवर्ती दक्षिणी

राज्यों को छोड़कर भारत का अधिकांश भाग सम्मिलित था। यद्यपि इस जिले में कहीं पर भी मौर्यकालीन साक्ष्य प्राप्त नहीं हुए हैं।

मौर्य साम्राज्य के विघटन के परश्चात शासन करने वाले शुंगों के आधीन यह भू-भाग रहा होगा। बैतूल के समीप के विदर्भ के शासक यज्ञसेन को शुंग शासक अग्निमित्र के बहनोई वीरसेन ने पराजित किया था।

शुंगों के पश्चात् शक व सातवाहनों के मध्य दीर्घकालीन चले संघर्ष के उपरांत इस भू-भाग पर सातवाहनों का आधिपत्य स्थापित हो गया। नानाघाट शिलालेख के अनुसार सातवाहन राजवंश के तृतीय नरेश शातकर्णि प्रथम ने दूर-दूर तक विजय प्राप्त की थी। होशंगाबाद, विदिशा तथा त्रिपुरी (जबलपुर) में प्राप्त सातवाहन राजवंश के सिक्के से भी यह प्रमाणित होता है कि बैतूल के भू-भाग पर सातवाहन शासकों का अधिकार रहा होगा।

यहाँ गुप्तों तथा बाकाटकों ने भी राज्य किया। ईसा पश्चात् तृतीय शताब्दी के उत्तरार्द्ध में बैतूल बाकाटकों के अधीन हुआ। सातवाहनों के पतन के पश्चात् बाकाटक एक शक्तिशाली राजवंश रहा, जिसने विशाल साम्राज्य स्थापित किया था। बैतूल जिला भी उनके आधीन रहा होगा। बाकाटक वंश के प्रवरसेन प्रथम (लगभग 275-335 ई.) ने अपने पैतृक राज्य का विस्तार कर एक विशाल साम्राज्य स्थापित किया था। जिसके अंतर्गत बैतूल जिले का भू-भाग अवश्य रहा होगा। बाकाटक शासक प्रवरसेन द्वितीय (410-440 ई.) तथा उसके उत्तराधिकारियों के आधीन भू-भाग रहा होगा। बाकाटक शासक पृथ्वीसेन ने अपने पुत्र रूद्रसेन द्वितीय का विवाह गुप्त राजवंश के सम्राट चन्द्रगुप्त द्वितीय की पुत्री प्रभावती के साथ किया था। उसके पुत्र प्रवरसेन द्वितीय के राजाज्ञापदों में उल्लेखित स्थानों के नामों के प्रमाण के आधार पर अंतिम रूप से यह सिद्ध होता है कि बैतूल जिले का भू-भाग उसके आधीन था।

बैतूल जिले के पट्टन ग्राम में प्राप्त चन्द्रगुप्त द्वितीय की स्वर्णमुद्रा वर्तमान में नागपुर संग्रहालय में संरक्षित है। इस गुप्त मुद्रा से ज्ञात होता है कि बैतूल जिले पर गुप्त सम्राटों का प्रभाव रहा होगा। गुप्त सम्वत् 199 (518 ई.) का एक ताम्रपत्र,

जो बैतूल नगर से प्राप्त हुआ है। परिव्राजक महाराज संक्षोभ का है। इसमें उसे डगाला और 18 आटविक राज्यों का शासक बतलाया गया है।

गुप्तों तथा बाकाटकों के पश्चात् बैतूल जिले का भू–भाग राष्ट्रकूटों के आधीन आ गया। जिले के तिवारखेड़ तथा मुलताई नामक स्थानों में प्राप्त हुए दो ताम्रपत्रों से यह पता चलता है, कि राष्ट्रकूट वंशीय नरेशों ने सातवीं और आठवीं शताब्दी ईस्वी में बैतूल पर आधिपत्य स्थापित किया था। नन्नराज के मुलताई ताम्रपत्र द्वारा नन्नराज द्वारा एक ब्राह्मण को तीन ग्रामों (जलाउकुहे, तिवरखेड़ तथा धुईखेत) को दान दिए जाने का उल्लेख है। अभिलेखों के आधार पर कहा जा सकता है कि कम से कम चार राष्ट्रकूट नरेशों–दुर्गराज उसका पुत्र गोविन्दराज, पौत्र स्वामिकराज तथा प्रपौत्र नन्नराज ने बैतूल जिले के भू–भाग को अपने शासनाधीन किया था। नन्नराज ने लगभग 690–735 ई. के मध्य शासन किया था।

लगभग 973 ई. में पश्चिमी चालुक्यों द्वारा राष्ट्रकूटों से यह भू–भाग छीन लिया गया। अतः कहा जा सकता है, कि पश्चिमी चालुक्यों के इस क्षेत्र में प्रभावी होने के पूर्व तक पराक्रमी राष्ट्रकूट नरेशों का आधिपत्य रहा होगा।

राष्ट्रकूट साम्राज्य के विघटन के पश्चात् खेरला राजवंश के इस भू–भाग पर प्रभावी होने तक का काल अंधकारमय है। खेरला राजवंश ने बैतूल सहित विस्तृत भू–भाग पर राज्य स्थापित किया था। खेरला राजवंश का प्रथम गौड़ शासक राजा नरसिंह राम, एक महत्वाकांक्षी और शक्तिशाली शासक था। कालांतर में खेरला राज्य वहमनियों, मालवा के सुल्तानों तथा गुजरात के सुल्तानों के आपसी संघर्ष की जड़ बन गया। 1433 ई. में खेरला मालवा के सुल्तानों के अधीन आ गया, इस तरह खेरला राजवंश के शासन का अंत इस क्षेत्र पर से हो गया।

मुगल काल में 1562 ईस्वी में अकबर ने संपूर्ण मालवा पर कब्जा कर लिया और इस तरह यह भू–भाग मुगलों के अधीन हो गया। मुगलों के पतन के पश्चात् खेरला राज्य यानि वर्तमान बैतूल जिले के भू–भाग पर देवगढ़ के बख्तबुलन्द के आधिपत्य में आ गया। सन् 1742 में नागपुर के मराठा राधोजी भौसलें ने बैतूल जिले पर अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया। मराठों ने अपने शासानावधि में राजस्व व प्रशासनिक स्तर पर इस भू–भाग के निमित्त काफी सुधार किए। ईस्वी

सन् 1817 में सीतावाड़ी के युद्ध के परिणामस्वरूप बैतूल जिला ईस्ट इण्डिया कंपनी के अधीन हो गया। सन् 1820 में बैतूल जिले को सागर–नर्मदा टेरेटरीज में सम्मिलित कर लिया गया। 1857 के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम में तथा महात्मा गाँधी के नेतृत्व में चले स्वाधीनता संग्राम में इस जिले के नागरिकों ने पूर्व मनोयोग से अंग्रेजों का प्रबल विरोध किया था। भारत को स्वतंत्रता दिलाने में बैतूल जिले को स्वतंत्रता संग्राम सेनानियों का अतुलनीय योगदान रहा।

टी. १-६०२१

संदर्भ सूची

1. देखिए इंडियन आर्क्यालॉजी 1998–99 ए रिव्यू, पृ. 88–89, शर्मा आर.के. तथा मिश्र, ओ.पी. (संपादित) आर्क्यालॉजीकल एक्स्केवेशन्स इन सेन्ट्रल इंडिया, पृ. 57
2. देखिए डाइमेन्शन्स आफ ह्यूमन कल्चर्स इन सेन्ट्रल इंडिया, दिल्ली, 2001 पृ. 19–20 तथा ''इन्वेस्टीगेशन्स इन टु आर्क्यालॉजी ऑफ मण्डला डिस्टिक्ट'' जर्नल ऑफ म.प्र. इतिहास परिषद, भोपाल 2000, पृ. 64
3. महाभारत समापर्व, 31, 12
4. विष्णु पुराण, 2, 3, 11
5. महाभारत, वनपर्व, 87, 4–5–6–7
6. देखिए विजयेन्द्र कुमार माथुर, ऐतिहासिक नामावली, प्रकाश शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार, शाहदरा प्रिंटिंग प्रेस, 1969, पृ. 53–54
7. देखिए एपीग्राफिया, इंडिका, जिल्द 13, पृ. 81
8. देखिए ब्राउन, सी, कैटलॉग आफ दि प्रिहिस्टोरिक एन्टीक्युटीज इन दि इंडियन म्यूजियम, 1917, पृ. 146–151